वाहनों की संख्या के साथ बढ़ती बीमारियां

डॉ. महेश परिमल

ग्लोबल वार्मिंग को लेकर आज पूरा विश्व चिंतित है। कोपनहेगन एक तरह से कोपभवन ही बनकर रह गया है। कितने ही देशों के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति एवं विचारकों ने अपनी-अपनी बात रखी पर नतीजा सिफर ही रहा।

सचमुच यह समस्या विकराल है। पर यदि हम थोड़ी गंभीरता से विचार करें, तो यह सवाल उठता है कि आखिर वह कौन-सा तत्त्व है, जो हमारे बहुत करीब रहकर हमारे शरीर को नुकसान पहुंचा रहा है? आखिर तमाम दवा कंपनियों की तरह आज ऑटोमोबाइल उद्योग सरकार पर इतना अधिक हावी क्यों है कि उसे अपने कामकाज के लिए सबसिडी मिल जाती है?

हमारा देश हर रोज़ लाखों टन कार्बन मोनोऑक्साइड पैदा करता है, उससे भी दुगनी तेज़ी से हमारे यहां कांक्रीट के जंगल फैल रहे हैं। जब हम जानते हैं कि पर्यावरण को बिगड़ने से केवल पेड़ ही बचा सकते हैं, तो पेड़ लगाना सबके लिए अनिवार्य क्यों नहीं कर दिया जाता? हरे-भरे पेड़ काटने वाले के लिए कड़ी से कड़ी सज़ा क्यों नहीं तय कर दी जाती? कहीं उद्योग स्थापित हो रहा है, तो उस स्थान पर जितने पेड़ काटे जा रहे हों, उसे किसी दूसरे स्थान पर दस गुना पेड़ लगाकर उनकी देखभाल का काम क्यों न सौंपा जाना चाहिए?

उपरोक्त विचार अवश्य ही आपको चौंका सकते हैं। पर चौंकाने वाली बात तो अब सामने आ रही है। क्या आप जानते हैं कि सिंगापुर में नई कार का रजिस्ट्रेशन नहीं होता; यदि होता भी है, तो उसके लिए बोली लगती है। जो सबसे ऊंची बोली लगाता है, उसकी कार का रजिस्ट्रेशन होता है। रजिस्ट्रेशन की इस प्रक्रिया में कई बार कार की कीमत से अधिक धन खर्च हो जाता है। न्यूयॉर्क के मेनहेटन में कई स्थानों पर कारों की पार्किंग का शुल्क इतना अधिक है कि लोग वहां अपनी कार ले ही नहीं जाते, वे पैदल या किसी अन्य साधन से वहां पहुंचते हैं। लंदन में कार वालों से एक विशेष प्रकार का टैक्स लिया जाने लगा है, क्योंकि वायु प्रदूषण बढ़ाने में कारों का बहुत बड़ा योगदान है।

पुराना ज़माना याद करें, तब हमारे देश के महानगरों में ट्राम चला करती थीं। तांगे चला करते थे। उस समय सड़कों से घोड़ों की लीद साफ करने के लिए विशेष व्यवस्था भी थी। पर अब तो सड़कों पर वाहनों द्वारा छोड़ी गई कार्बन मोनोऑक्साइड को साफ करने के लिए हमारे पास कोई व्यवस्था ही नहीं है।

यानी हम जितने अधिक आधुनिक हुए हैं, उतने ही देश और समाज के प्रति लापरवाह भी हुए हैं। इस पर भी हम यदि सभ्य होने का दंभ भरें, तो यह हमारी मूर्खता ही होगी।

आज पूरा वायुमंडल ज़हरीली गैसों से आच्छादित है। इसका समाधान केवल पेड़ लगाना ही है। पर पेड़ लगाए कौन? यदि पौधे लगा भी दिए जाएं, तो उनकी देखभाल कौन करेगा? क्या देश के नागरिकों के लिए पेड़ लगाना अनिवार्य नहीं किया जा सकता? यदि हमें स्वस्थ समाज की स्थापना करनी है और इसके लिए हम वास्तव में गंभीर हैं, तो इस दिशा में ठोस प्रयास होने ही चाहिए।

कार मालिकों से पर्यावरण और नागरिकों के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने के लिए टैक्स लिया जाए, तो रास्तों पर वाहनों की धमाचौकड़ी कम हो सकती है। विश्व विख्यात

आर्किटेक्ट गौतम भाटिया कहते हैं कि विश्व में शहरों की यातायात समस्या और पृथ्वी के बढ़ते तापमान के लिए उच्च एवं उच्चतर मध्यम वर्ग का कार क्रेज़ जवाबदेह है। हमारी सरकार ऑटोमोबाइल उद्योग को इतनी अधिक राहतें और सबसिडी दे रही है, इसके कारण मध्यम वर्ग कार खरीदने के लिए प्रेरित हो रहा है।

अमरीका की पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी ने वाहनों से निकलने वाले धुएं पर दस वर्षों तक गहराई से अध्ययन करने के बाद पाया कि इस धुएं से इन्सान को कैंसर होने की पूरी-पूरी संभावना है।

हमारे देश में पेट्रोल और डीज़ल के दामों में करीब दस रुपए का अंतर है। इस कारण आज अनेक कंपनियां अपने वाहन डीज़ल चालित बनाने में लगी हैं। इन सभी कंपनियों की भारत सरकार पर गहरी पकड़ है।

अमरीका भी इससे अछूता नहीं है। वहां की पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी ने जो रिपोर्ट तैयार की, उसमें पांच बार सुधार किया गया। अंततः सितंबर 2008 में अंतिम रिपोर्ट तैयार की गई। उसमें स्पष्ट किया गया कि डीज़ल के धुएं में सांस लेने से कैंसर हो सकता है। इस रिपोर्ट के अनुसार डीज़ल इंजन नाइट्रोजन ऑक्साइड और सल्फर डाईऑक्साइड के अलावा एल्डीहाइड्स, बेंज़ीन, 1-3 ब्यूटाडाईन, पोलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन जैसी ज़हरीली गैसें वायुमंडल में छोड़ते हैं। जो लोग सांस के साथ डीज़ल का धुआं ग्रहण करते हैं, उन्हें फेफड़े का कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। यानी जिसने भी डीज़ल का धुआं ग्रहण किया, उसने कई तरह की बीमारियों को आमंत्रित किया। यह तथ्य उस सर्वेक्षण से भी सिद्ध हो चुका है, जिसमें यह पाया गया था कि जो लोग डीज़ल के धुएं के सम्पर्क में रहते हैं, उनमें फेफड़े का कैंसर अधिक पाया गया। हवा में डीज़ल के धुएं की थोड़ी-सी भी मात्रा कैंसर को आमंत्रित करती है। रिपोर्ट में तो यह भी कहा गया है कि पूरे विश्व में डीज़ल से चलने वाले वाहनों पर प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए। यह तो संभव ही नहीं है।

हमारे देश में ऑटोमोबाइल लॉबी बहुत ही मज़बूत है। सरकार की नीतियां उनसे प्रभावित हैं। अभी हमारे देश में पीयूसी के नियम कायदों से लोग अनभिज्ञ हैं। सरकार भी उन पर सख्ती से अमल की कोशिश नहीं करती। किसी भी वाहन से कितना भी धुआं निकले, वह रिश्वत देकर बोगस पीयूसी सर्टिफिकेट बनवा सकता है। कई बार तो ऐसा भी होता है कि वाहन के बिना भी पीयूसी सर्टिफिकेट प्राप्त किया जा सकता है।

अभी हमारे महानगरों की हालत बहुत ही खराब है। मुंबई में हर रोज़ 470 टन, दिल्ली में 810 टन, कोलकाता में 188 टन कार्बन मोनोऑक्साइड वातावरण में पहुंच रही है। इसी तरह से मुंबई में 108 टन ज़हरीले हाइड्रोकार्बन और 5.59 टन धूल कण धुएं के साथ उत्सर्जित होते हैं। दिल्ली की हवा में रोज़ 310 टन और कोलकाता की हवा में 44 टन हाइड्रोकार्बन मिल जाते हैं। ये सारे ज़हर नागरिकों की सांस के साथ फेफड़ों में जाते हैं और शरीर को भारी नुकसान पहुंचाते हैं।

हमारे देश में वाहनों की संख्या दिन दुनी रात चौगुनी बढ़ रही है। दिल्ली में रोज़ एक हज़ार नए वाहन सड़क पर आ रहे हैं। पिछले 47 साल में देश में पेट्रोल-डीज़ल से चलने वाले वाहनों की संख्या में 130 गुना वृद्धि हुई है। उसी तेज़ी से देश में प्रदूषण फैला है। जिस तरह से पीने के पानी एवं खुराक को प्रदूषित करने में जंतुनाशकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, उसी तरह हवा को प्रदूषित करने में पेट्रोल-डीज़ल से चलने वाले वाहनों की मुख्य भूमिका है। आज देश के ऑटोमोबाइल उद्योग में करीब 50,000 करोड़ रुपए का पूंजी निवेश उद्योगपतियों ने किया है। इसमें 1983 के बाद स्थिति और भी अधिक भयावह हुई है, जब सरकार ने इस क्षेत्र को विदेशी कंपनियों के लिए खोल दिया। उसके बाद कई विदेशी कंपनियों की कारें भारत की सड़कों पर दिखाई देने लगी हैं। ग्राहकों को लुभाने के लिए ऑटोमोबाइल कंपनियां नई-नई टेक्नॉलॉजी ला रही हैं। पर जब प्रदूषण नियंत्रण की बात आती है, तब कार्रवाई पुराने नियम-कायदों के अनुसार की जाती है जो 1996 के बाद अपडेट तक नहीं हुए हैं। आज देश के 90 प्रतिशत वाहन पुराने हो चुके हैं। इन वाहनों के लिए कोई नियम-कायदे नहीं हैं।

पिछले 50 वर्षों में पेट्रोल-डीज़ल की खपत में प्रचंड

वृद्धि हुई है। सन 2000-01 में हमने कुल 9.96 करोड़ मीट्रिक टन पेट्रोलियम पदार्थों का उपयोग किया। इसमें 3.79 करोड़ टन डीज़ल और 0.66 करोड़ टन पेट्रोल था। इस पर कुल 1565 करोड़ डॉलर यानी 78,250 करोड़ रुपए खर्च हो गए। पेट्रोल-डीज़ल पर इतना खर्च करके हम कैंसर, दमा और अन्य चर्म रोगों का ही आयात कर रहे हैं। हमारी सरकार हर वर्ष नए रास्ते बनाने और पुराने रास्तों की मरम्मत पर अरबों रुपए खर्च करती है। मुंबई में फ्लाईओवर बनाने में 55 हज़ार करोड़ रुपए लग गए। एक अनुमान के मुताबिक बैंगलूरु में रास्तों की मरम्मत के लिए 30 हज़ार करोड़ रुपए की आवश्यकता है।

सरकार कई तरह के टैक्स के रूप में अरबों रुपए वसूलती है। पर इसका लाभ केवल वही उठाते हैं जिनके पास स्वयं का वाहन है। देखा जाए, तो रास्तों की मरम्मत का सारा खर्च कार वालों से वसूला जाना चाहिए। वाहनों के धुएं से हर वर्ष लाखों लोग कैंसर और दमा जैसी असाध्य बीमारियों का शिकार हो रहे हैं, इन मरीज़ों के इलाज का खर्च भी वाहन मालिकों से लिया जाना चाहिए। यदि ये सारे खर्च कार मालिकों से लिए जाएं, तो उन्हें अपनी कार दस लाख रुपए से कम नहीं पड़ेगी। हर कार के पीछे हर महीने 25 हज़ार रुपए खर्च करना पड़ेगा। यदि सरकार इस दिशा में कड़े कदम उठाए, तो पर्यावरण को और अधिक खतरनाक बनाने वाले वाहनों की संख्या पर अंकुश लग जाएगा।

इसमें एक हानि यह होगी कि सरकार को ऑटोमोबाइल उद्योग से मिलने वाला अरबों रुपए का चंदा नहीं मिलेगा। संभवतः इसी हानि को देखते हुए सरकार इस प्रकार का जनहितैषी कदम नहीं उठा पा रही है। चंदे का मोह छोड़ दें, तो कुछ बेहतर हो सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***